

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

शिशु-निर्माण प्रकरण

दिवसोऽद्य चतुर्थस्तु धर्मसत्रस्य तस्य च।
 अभूद् गृहस्थजस्याशु यत्र धर्मात्मसु शुभा ॥ १ ॥
 नृषु कुंभागतेष्वेषा चर्चा प्रचलिताऽभितः।
 ऋषिर्धौम्यः करोत्यत्र सत्संगमुपयोगिनम् ॥ २ ॥
 श्रुतं येनैव सोत्साहः स नरोभूद् विहाय च।
 कर्माण्यन्यानि सत्संगे समयात्पूर्वमाययौ ॥ ३ ॥
 आगंतृणां तमुत्साहं दृष्ट्वा चैव प्रतीयते।
 विस्मृतं ते गृहस्थस्य ज्ञातुं गौरवमुत्तमम् ॥ ४ ॥
 अभूवन् सकला येन दायित्वानां स्वकर्मणाम्।
 नवीनमिव संज्ञानं तेषां तत्रोदगान् नृणाम् ॥ ५ ॥
 श्रवणानंतरं तत्र संदर्भं ते परिष्कृतिम्।
 परिवर्तनमानेतुमदृश्यंतसमुत्सुकाः ॥ ६ ॥
 तेषामाकृतिगण्याश्च भावा एवं समुद्गताः।
 अभूत्प्रवचनस्याद्य विषयः शिशुनिर्मितिः ॥ ७ ॥

टीका—आज गृहस्थ सत्र का चौथा दिन था। कुंभ पर्व में आए धर्मप्रेमियों में यह चर्चा फैली कि ऐसा उपयोगी सत्संग धौम्य ऋषि चला रहे हैं। जिसने सुना उसी का उत्साह उभरा और सब काम छोड़कर उस पुण्य प्रयोजन में सम्मिलित होने के लिए समय से पूर्व ही जा पहुँचे। आगंतुकों के उत्साह को देखते हुए प्रतीत होता था कि वे भूली हुई गृहस्थ गरिमा को समझने में बहुत हद तक सफल हुए हैं। उन्हें अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व का नए सिरे से भान हुआ है। सुनने के उपरांत वे उस संदर्भ में सुधार, परिवर्तन के लिए उत्सुक दृष्टिगोचर होते थे। यह विचार भाव उनके चेहरे से टपके पड़ रहे थे। आज के प्रवचन का विषय था शिशु निर्माण ॥ १-७ ॥

धौम्य उवाच
 महर्षिर्धौम्य आहाग्रे प्रसंगं स्वं विवर्द्धयन्।
 तत्र संबोध्यतान् सर्वान् सदगृहस्थांस्तु पूर्ववत् ॥ ८ ॥
 बालो योऽद्यतनः सः वै भविता राष्ट्रनायकः।
 समाजग्रामणीर्वृक्षा भवंत्येव यथाक्षुपाः ॥ ९ ॥
 कुशला अतएवात्र मालाकारा विशेषतः।
 क्षुपाणां रक्षणे ध्यानं ददत्यावश्यकं विधौ ॥ १० ॥
 गोमयादेर्जलस्यापि न्यूनता न भवेदपि।
 वन्याः पशवा एतान् न नाशयेयुरितीव ते ॥ ११ ॥
 सावधाना भवंत्येव कस्मिन् क्षेत्रे च संभवा।
 क्षुपाणां क्रियतां वृद्धिः संकुलत्वं न तन्वते ॥ १२ ॥
 गृहस्थैश्चेतनैर्भाव्यं मालाकारैरिव स्वयम्।

गृहोद्यानस्य रम्यास्ते क्षुपा बोध्याश्च बालकाः ॥ १३ ॥

टीका—महर्षि धौम्य ने अपने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए उपस्थित सदगृहस्थों को संबोधित करते हुए कहा, आज का बालक कल समाज संचालक और राष्ट्रनायक बनता है। छोटे पौधे ही विशाल वृक्ष बनते हैं। अतएव कुशल माली छोटे पौधों की आवश्यकता एवं सुरक्षा पर पूरा-पूरा ध्यान देते हैं। उन्हें खाद-पानी की कमी नहीं पड़ने देते। वन्य पशु उन्हें नष्ट न कर डालें, इसका समुचित ध्यान रखते हैं। किस खेत में कितने पौधों के बढ़ने की गुंजाइश है इस बात का ध्यान रखते हुए धिच-पिच नहीं होने देते। गृहस्थों को जागरूक माली की तरह होना चाहिए तथा गृह उद्यान के सुरम्य पौधे बालकों को समझना चाहिए ॥ ८-१३ ॥

परिवार एक फुलवारी के समान है, जिसमें बालकों के रूप में पुष्प विकसित होते एवं अपनी सुरभि से सारे वातावरण को आह्लादयुक्त बना देते हैं। जैसा कि पूर्व प्रकरणों में चर्चा की जा चुकी है, परिवार समाज की एक छोटी इकाई है। राष्ट्र के भावी नागरिक, परिवार रूपी खदान से ही निकलते हैं एवं अपनी प्रतिभा द्वारा सारे समुदाय के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बच्चे छोटी पौध के समान हैं, एवं माता-पिता की भूमिका एक माली की होती है। पौधे को वृक्ष का रूप लेने से पूर्व काफी उपचारों से गुजरना पड़ता है। यह कार्य कुशल माली द्वारा ही संभव हो पाता है। निराई-गुडाई, काँट-छाँट, वर्षा-पानी एवं सघनता से बचाव इत्यादि के माध्यम से ही नर्सरी की पौध एक वृक्ष का रूप लेती है। परिवार रूपी पौध में माता-पिता को ही सारा ध्यान रखना होता है कि बालकों के समुचित विकास में उनका योगदान हो पा रहा है या नहीं। थोड़ी सी भी असावधानी अनेकानेक समस्याओं को जन्म दे सकती है। बालक की अपरिपक्व स्थिति से परिपक्व स्थिति में विकास होते समय यदि कोई त्रुटि रह जाती है, तो उसका सारा दोष परिवार रूपी धुरी के दो महत्वपूर्ण अंग माता-पिता पर ही जाता है। इसीलिए बालकों को जन्म देने से भी अधिक जागरूक बने रहकर उनके विकास को समुचित महत्व देने वाले अभिभावकों की महत्ता बताई जाती रही है एवं ऐसे आदर्श माता-पिता के नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते रहे हैं।

भारतीय माताएँ सुसंतानों के निर्माण में तथा देश को अमूल्य नवरत्न प्रदान करने में हमेशा बेजोड़ रही हैं।

कुशरीरमृता ये तु मनोरोगाभिबाधिताः।

दुःस्वभावा दुराचारा वर्द्धयेयुर्न संततिम् ॥ १४ ॥

भारायिताः समाजाय तेषां संततिरंततः।

संततौ हि सुयोग्यायां पितृसद्गतिरिष्यते ॥ १५ ॥

हीना चेत्संततिस्तस्या जन्मदातृनृणां ततः ।

इहलोके परत्रापि दुर्गतिर्निश्चिताऽभितः ॥ १६ ॥

टीका—शारीरिक, मानसिक और स्वभाव चरित्र की दृष्टि से जो लोग पिछड़ी स्थिति में हों, वे बच्चे उत्पन्न न करें। समाज का भार न बढ़ाएँ यही उपयुक्त है। संतान के सुयोग्य होने पर पितर सद्गति प्राप्त करते हैं, किंतु हेय स्तर के होने पर जन्मदाताओं को इस लोक में तथा परलोक में दुर्गति का भाजन भी बनना पड़ता है ॥ १४-१६ ॥

सृष्टा ने विवाह की व्यवस्था इंद्रिय लिप्सा की पूर्ति और भोग विलास के लिए नहीं वरन् सृष्टि संचालन के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन राष्ट्र की संपत्ति, श्रेष्ठ नागरिकों को जन्म देने के लिए नियमित जीवन जीने के लिए की है। विवाह एक संकल्प है, जो राष्ट्र के भावी बल, सत्ता और सम्मान को जाग्रत् रखने के लिए किया जाता है।

शास्त्रकार का कथन है—

तावेहि विवहावहै सह रेती दधावहै ।

प्रजां प्रजनतावहै पुत्रान् विंदावहै बहून् ॥

अर्थात्, विवाह का उद्देश्य परस्पर प्रीतियुक्त रहकर राष्ट्र को सुसंतति देना है।

शारीरिक, मानसिक और स्वभाव चरित्र की दृष्टि से स्वस्थ, समुन्नत और सुयोग्य व्यक्ति को ही विवाह करना चाहिए न कि दुष्ट, पतित, दुराचारी और पिछड़ी शारीरिक, मानसिक स्थिति के व्यक्ति को।

ऋग्वेद का स्पष्ट आदेश है

तमस्मेरा युवतयो युवान् मर्मृज्यमानाः परियंत्यापः ।

स शुक्रेभिः शिक्वभिरेवदस्मे

दीदायानिध्मोघृत निर्णिगप्सु ॥

—ऋग्वेद २।३५।४

अर्थात् जिनके हृदय शुद्ध, निर्मल और पवित्र हों, तथा जिनकी आयु इस हेतु पूर्ण हो चुकी हो, कि युवक और युवती परस्पर पाणिग्रहण करें। वे शक्ति संपन्न जन विवाह करके परिवार को सतेज बनाएँ।

समाज को सुयोग्य नागरिक देने के लिए ही प्रजनन किया जाए, न कि कीड़े-मकोड़ों की तरह अयोग्य और प्रतिभाहीन बच्चों को जन्म दिया जाए। वंश वृद्धि का अर्थ है समाज को राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक प्रदान करना।

मरणोत्तर जीवन एवं पितर योनि का अस्तित्व जितना सत्य एवं महत्त्वपूर्ण है, उतना ही सत्य यह भी है कि योग्य संतान के श्रेष्ठ कर्मों से ही पितरों, अभिभावकों को वांछित योनि एवं सुख मिलता है।

कर्मभिः सद्भिरेवैतत्कुलं संशोभते नृणाम् ।

संततेः संस्कृताया हि हस्तदत्तैः प्रियैरलम् ॥ १७ ॥

पिंडैः पितर आयांति सुखं संतोषमेव च ।

कुपात्राणां ध्रुवं यांति नरकं पितरः सदा ॥ १८ ॥

उत्पाद्या तावती मर्त्यैः संततिः संभवेदपि ।

स्नेहरक्षा विकासादि यावत्याः सुव्यवस्थितम् ॥ १९ ॥

विना विचारं दायित्वं संततीनां च गृह्यते ।

यदि दुःखं तदा यांति संततीनां दुःखयंति च ॥ २० ॥

टीका—जन सामान्य में एक रूढ़िवादी मान्यता यह है कि वंश परंपरा का निर्वाह संतान के माध्यम से ही संभव है। जब कि यह नितांत भ्रांत चिंतन है। संतान यदि गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से निकृष्ट हुई तो वंश को डुबाती, घर परिवार को दुर्गति के गर्त में डालती भी है।

शास्त्रों में यह नहीं कहा गया है कि वंशवृद्धि से ही सद्गति मिलती है, निस्संतान व्यक्ति को सद्गति मिलती है, सद्गति तो मिलती है, व्यक्ति को अपने सत्कर्मों से। मनुस्मृति का यह श्लोक द्रष्टव्य है।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।

दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥

—अ० ५ श्लोक १५९

अर्थात् कइयों हजार कुमार, ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने बिना संतान उत्पन्न किए ही अपने उच्च विचारों, सत्कार्यों और सेवा व्रतों द्वारा स्वर्ग लोक को प्राप्त किया है।

संतान न होते हुए भी कितने ही लोगों का यश उज्ज्वल और धवल है। कृष्ण को सभी जानते हैं, पर उनकी संतानों के नाम भी शायद ही किसी को मालूम हों। राम के बाद लवकुश को छोड़कर उनकी अगली पीढ़ी के नाम शायद किसी को ज्ञात हों। महावीर तो वीतराग और गृहत्यागी तपस्वी थे, उनका यश आज भी बढ़ रहा है। बुद्ध को राहुल से अधिक लोग जानते हैं। ईसा, शंकराचार्य, रामानंद, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीर, ज्ञानेश्वर, रैदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, महर्षि रमण, रामतीर्थ, अरविंद, राजा महेंद्र प्रताप आदि कितने ही महात्मा महापुरुष थे, जो या तो अविवाहित रहे अथवा गृहस्थ भी रहे, तो उनकी कीर्ति संतान से नहीं उनके अपने सत्कार्यों से ही अमर हुई। अतः व्यक्ति का नाम और यश संतान से नहीं, उसके सद्गुणों और सत्कर्मों से बढ़ता और अमर होता है। संतान यदि निकृष्ट स्तर की हो तो जन्म देने वाले माता-पिता एवं पूर्वज सभी इसका फल भोगते एवं मरणोत्तर जीवन में त्रास पाते हैं।

महर्षि धौम्य उपस्थित जन समुदाय को समझाते हैं कि माता-पिता संतान अपनी ही उत्पन्न करें, जितनों के प्रति समुचित जिम्मेदारी का निर्वाह कर सकें, अन्यथा संतानों की संख्या ज्यादा बढ़ा लेने और उचित उत्तरदायित्व का निर्वाह न

३.३० प्रज्ञोपनिषद्

कर पाने के कारण संतान ऐसी निकलेगी, जो कुल को कलंकित करेगी और समाज पर अनावश्यक भार बनेगी।

ऋग्वेद में स्पष्टतः कहा गया है।

बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश।

—ऋग्वेद १/६४/३२

अर्थात् अधिक संतानें सदा कष्ट का कारण बनती हैं। इतना ही नहीं अवांछनीय प्रजनन कितने संकट उत्पन्न करता है, इसे गंभीरता से समझने का प्रयत्न करने पर लगता है मरणं विंदुपातेन की उक्ति अक्षरशः सही है। विशेष प्रकार की बिच्छू मादा और एक खास किस्म की मकड़ी प्रजनन के साथ ही मृत्यु के मुख में चली जाती हैं। मनुष्य को वैसा तो नहीं करना पड़ता, पर त्रास लगभग उतना ही मिलता है।

क्लिन्नमृत्नेव बालास्तु भवंत्येव च तान् समान्।

परिष्कृतान् कुटुंबस्य वृत्तौ कर्तुमिहेष्यते॥ २१॥

एतेषां स्नेहिनामत्र समाह्वाच्च नरः स्वयम्।

पूर्वमेवोपयुक्ताश्च स्थितिरुत्पादयेच्छुभाः॥ २२॥

पित्रोः शारीरिकं स्वास्थ्यं विकासो मानसस्तथा।

अर्थप्रबंध एतादृग् भवेद् येन नवागतः॥ २३॥

उपयुक्तां स्थितिं नित्यं लभते यदि कश्चन।

पित्रो रोगी भवेत्तर्हि संततिः साऽपि जन्मनः॥ २४॥

अनुन्नतोऽसंस्कृतश्च जन्मदातृस्तरो यदि।

बालास्तथैव मूढाश्च दुश्चरित्रा भवंत्यपि॥ २५॥

अर्थस्थितावयोग्यायामभावग्रस्ततां समे।

बालका यांति तिष्ठन्ति तेऽविकासस्थितौ समे॥ २६॥

टीका—बालक गीली मिट्टी के समान है। उन्हें परिवार के वातावरण में ढाला जाता है। इन सम्मानित अभ्यागतों को बुलाने से पूर्व उनके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेनी चाहिए। माता-पिता का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास, अर्थ-प्रबंध ऐसा होना चाहिए, जिससे नवागत को आरंभ से ही उपयुक्तता उपलब्ध हो सके। माता-पिता में से कोई भी रोगी होने पर संतान जन्मजात रूप से रोगी उत्पन्न होती है। जन्मदाताओं का बौद्धिक स्तर गया गुजरा हो, स्वभाव अनगढ़ हो तो बच्चे भी वैसे ही मूढमति उत्पन्न होंगे और आगे चलकर दुश्चरित्र बनेंगे। अर्थ व्यवस्था ठीक न होने की स्थिति में बालकों को अभावग्रस्त रहना पड़ता है और वे अविकसित स्तर के रह जाते हैं॥ २१-२६॥

पारिवारिक वातावरण की शिशुओं के निर्माण में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार कुम्हार चाक से देता है, ठीक उसी प्रकार माता एवं पिता अभ्यागत संतान को गुण, कर्म, स्वभावी रूपी संपदा के माध्यम से संस्कार देने में सक्षम हैं। यह उन पर निर्भर करता है कि वे इस कार्य में कितने सजग एवं समर्थ हैं। शास्त्रों में इसीलिए विवाह एवं प्रजनन

संबंधी आयु मर्यादा के साथ-साथ पति-पत्नी की मनःस्थिति परिवार रूपी परिस्थिति को अनुकूल बनाने के प्रसंग सुप्रजनन के संदर्भ में आते हैं।

पहले माता-पिता का स्तर ऊँचा होना, चिंतन परिष्कृत होना एवं शरीर का स्वस्थ होना जरूरी है। ऐसा न होने पर जैसे अनगढ़, चरित्रहीन अभिभावक होंगे, वैसा ही संतति जन्मेगी। स्वावलंबन द्वारा आजीविका उपार्जन की जब तक व्यवस्था न हो, तब तक संतान को निमंत्रण न दिया जाए। निर्धनता कोई अभिशाप नहीं, पर अर्थव्यवस्था ऐसी तो हो कि आगतुक अतिथि का भार वहन किया जा सके।

गृहस्थजीवनैर्मत्यैरुपस्थाप्या निजाः शुभाः।

आदर्शा अथ सौजन्ये संस्कार्य च कुटुंबकम्॥ २७॥

अभ्यासः सत्प्रवृत्तीनां कर्तव्यः सततं तथा।

स्नेहो देयश्च कर्तव्यः हार्दिकी ममताऽपि च॥ २८॥

अवाञ्छनीयतोत्पत्तेः सतर्कैः स्थेयमप्यलम्।

भ्रष्टं चिंतनमप्येतदुराचरणमप्यथ॥ २९॥

उच्छृङ्खला व्यवहतिः सद्गुणानां तु तस्कराः।

विचार्येदं निरोद्ध्याः स्वक्षेत्रे प्रहरिणेव च॥ ३०॥

प्रांगणे विषवृक्षश्चानौचित्यस्य कदाचन।

नैवोद्भवेदिदं सर्वैर्गौरवं चाभिमन्यताम्॥ ३१॥

सद्गृहस्थाश्च धन्यास्ते सर्वतो गौरवान्विताः।

परिवारं निजं ते तु सुखिनं च समुन्नतम्॥ ३२॥

सुसंस्कृतं विनिर्मान्ति श्रेयो लाभं प्रयांति च।

भविष्यदुज्ज्वलं तेषां संततेरपि स्वस्य च॥ ३३॥

टीका—गृहस्थ जीवन जीने वालों को अपना आदर्श उपस्थित करके समूचे परिकर को सज्जनता के ढाँचे में ढालना चाहिए और सत्प्रवृत्तियों का सतत् अभ्यास करना चाहिए। स्नेह दिया जाए और दुलार किया जाए किंतु साथ ही अवांछनीयताओं से सतर्क भी रहा जाए। भ्रष्ट चिंतन, दुष्ट आचरण और उच्छृंखल व्यवहार को चोर तस्कर मानकर सावधान प्रहरी की तरह, उन्हें अपने क्षेत्र में प्रवेश करने से रोकना चाहिए। अनौचित्य का विष-वृक्ष अपने आँगन में न उगने देने में ही गौरव है। ऐसे गौरवशाली सद्गृहस्थ हर दृष्टि से धन्य बनते हैं। अपने परिवार को सुखी, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाकर श्रेय लाभ प्राप्त करते हैं, उनकी संतति का भविष्य तथा अपना भविष्य भी उज्ज्वल बन जाता है॥ २७-३३॥

परिवार में जैसा वातावरण होता है, जैसी प्रवृत्तियाँ पनपती हैं, बच्चे सहज ही उनका अनुकरण करते हैं। यह मानवी स्वभाव की एक जन्मजात विशेषता है कि बड़े जैसा करते हैं, छोटे उनके अनुरूप ही बनते चले जाते हैं। समाज रूपी विराट् परिवार में भी जैसा प्रचलन होता है, जनमानस सहज

ही उसके अनुरूप ढलता जाता है। जब परिवार में बड़े अपनाते, जीवन में उतारते हैं, तो बालकों में वे विशेषताएँ सहज ही विकसित होने लगती हैं। मनुष्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी गरिमा के अनुकूल आचरण कर अपने आदर्शों से दूसरों को शिक्षण दे। अभिभावकों को अपनी निज की बड़ी जिम्मेदारियों से भरी भूमिका गृहस्थ जीवन में होती है। यह उन्हीं का कर्तव्य है कि वे छोटे बच्चों के मानस में दुष्प्रवृत्तियों के प्रवेश को रोकने हेतु सतत् सतर्क रहें, एक पहरेदार की भूमिका निबाहें। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों को प्यार भरा शिक्षण देंगे, उन्हें स्नेह का अभाव अनुभव नहीं होने देंगे, किंतु साथ ही इतना अनुशासित भी रखेंगे कि वे इस दुलार का दुरुपयोग न करने लगें अथवा इसकी आड़ में अपना भविष्य नष्ट करने वाली निकृष्ट आदतें न अपनाने लगें। स्वयं अपना जीवन सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित बना लेना ही काफी नहीं होता। अपनी संतानों, परिवारीजनों में संस्कारों का पोषण देने हेतु कितना पुरुषार्थ किया गया, इससे ही जीवन की सार्थकता आँकी जाती है। ऐसे गृहस्थों की ही गरिमा श्लाघ्य है, इन्हीं का जीवन धन्य है।

समत्वेन च मान्यास्तु कन्याः पुत्राश्च मानवैः।

तयोर्भेदो न कर्तव्यो मान्या श्रेष्ठा च कन्यका ॥ ३४ ॥

सा हि श्रेयस्करी नृणामुभयोर्वशयोर्धतः।

जानक्या जनकः ख्यातः कुपुत्रैर्नहि रावणः ॥ ३५ ॥

अनुभवन्ति स्वतो डिंभा गर्भमातुरलं समैः।

गर्भिण्या मानसं स्वास्थ्यं शारीरं शोभनस्थितौ ॥ ३६ ॥

यथा स्याच्च तथा कार्यं विहाराहारयोरपि।

सात्विकत्वं भवेद् बालवृद्धिबाधा न संभवेत् ॥ ३७ ॥

वातावृत्तिः कुटुंबस्य सदा स्यादीदृशी शुभा।

कुसंस्कारा न बालेषु भवेयुरुदिता क्वचित् ॥ ३८ ॥

अभिभावकसंज्ञेभ्यो भिन्नैरपि जनैर्नहि।

व्यवहार्यं तथा येन दूषिता स्याच्छिशुस्थितिः ॥ ३९ ॥

चिन्तनं ते चरित्रं च यथा पश्यन्ति सद्मनि।

कुटुंबे वा तथा तेषां स्वभावो भवति स्वतः ॥ ४० ॥

भविष्यच्चिंतया तांश्च शोभनायां निवासयेत्।

वातावृतौ शिशू स्तेषां व्यक्तित्वस्यपरिष्कृतिः ॥ ४१ ॥

प्रारंभिकेषु वर्षेषु दशस्वेव मता शुभा।

अस्मिन् काले कुटुम्बं च सतर्कं सततं भवेत् ॥ ४२ ॥

उपयुक्ताः निजाः सर्वैः परिवारगतैर्नरैः।

उपस्थाप्याः शुभादर्शास्तेषामग्रे निरंतरम् ॥ ४३ ॥

टीका—कन्या और पुत्र को समान माना जाए। उनके बीच भेदभाव न किया जाए। पुत्र से भी अधिक कन्या को श्रेष्ठ और श्रेयस्कर माना जाना चाहिए, चूँकि वह पिता और श्वसुर दो वंशों के कल्याण से संबद्ध है। जनक ने कन्या से

ही श्रेय पाया और रावण के अनेक पुत्र उसके लिए अपयश का कारण बने। बच्चे गर्भ में रहकर माता से बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए गर्भिणी के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को सही रखा जाए, उसके आहार-विहार में ऐसी सात्विकता रखी जाए जो शिशु के विकास में व्यवधान उत्पन्न न करे। परिवार का वातावरण ऐसा रहे, जिसका बालकों पर कुसंस्कारी प्रभाव न पड़े। अभिभावकों के अतिरिक्त घर के अन्य सदस्य भी बालक के सम्मुख ऐसा व्यवहार प्रस्तुत करें, जिससे कोमल मन पर बुरी छाप न पड़े। चिंतन और चरित्र जैसा भी घर-परिवार में वे देखते हैं, वैसे ही ढलने लगते हैं। बच्चों के भविष्य का ध्यान रखते हुए उन्हें सुसंस्कारी वातावरण में ही पाला जाए। व्यक्तित्व के परिष्कार की ठीक अवधि आरंभ के दस वर्षों में मानी गई है। इस अवधि में समूचे परिवार को सतर्कता बरतनी चाहिए और अपने उपयुक्त उदाहरण सदा उसके सम्मुख प्रस्तुत करने चाहिए ॥ ३४-४३ ॥

जैसी भ्रांति जन सामान्य में संतान से वंश चलने की है, लगभग वैसी ही कन्या व पुत्र में अंतर मानने की भी है। सामान्यतया हर अभिभावक को पुत्र की ही आकांक्षा होती है, जबकि नर व नारी दोनों में कोई भेद नहीं है। इसके विपरीत नारी को तो संस्कारों की खदान बताया गया है, शक्ति रूपा माना गया है। वह सृजन की देवी है। किंतु सामाजिक प्रचलन, मूढ़ताएँ, जन्म होने के बाद से ही विवाह में धन व्यय होने की चिंता सदैव पुत्र के जन्म होने की मनौती ही मनवाती रहती है। अनेकों ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ पुत्रों ने अपने दुष्कर्मों से वंश को डुबोया एवं पुत्रियाँ अपने श्रेष्ठ कार्यों से अभिभावकों एवं समुदाय के लिए श्रेयाधिकारी बनीं। पुत्र व पुत्री में कन्या की महत्ता कितनी है। इस संबंध में एक आप्त वचन है दसपुत्रसमा कन्या, या स्यात् शीलवती सुता। जिस समाज में कन्या को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, वह निश्चित ही ऊँचा उठता है। वह अपने पिता का ही नहीं, जिस घर में विवाहित होकर जाती है, उसका भी कल्याण करती है।

महर्षि दयानंद ने कहा है भारतवर्ष का धर्म, उसके पुत्रों से नहीं सुपुत्रियों के प्रताप से ही स्थिर है। भारतीय देवियों ने यदि अपना धर्म छोड़ दिया होता, तो देश कब का नष्ट हो गया होता। कन्या को पुत्र के तुल्य ही समझने का आदेश महाराज मनु ने भी दिया है जैसे आत्मा पुत्र रूप में जन्म लेती है, वैसे ही पुत्री के रूप में भी जन्म लेती है।

—मनुस्मृति ९-१३०

नारी नौ माह तक भ्रूण को अपनी काया में रख, पोषक ही नहीं देती संस्कार भी देती है। यदि गर्भावस्था में माँ का चिंतन परिष्कृत, सात्विक है, उस पर भावनात्मक दबाव न पड़ता हो, वह सदैव महापुरुषों के आदर्श कर्तव्यों का चिंतन

३.३२ प्रज्ञोपनिषद्

मनन करती हो तो संतान भी वैसी ही उत्कृष्ट जन्मेगी। जन्म के बाद भी वैसा ही संस्कारमय वातावरण घर परिवार में बना रहना अनिवार्य है। जीवन के प्रारंभ के दस वर्ष शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। इस अवधि में उनको सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों की दृष्टि से अनौपचारिक शिक्षण दिया जाना चाहिए, ताकि वे श्रेष्ठ नागरिक के रूप में विकसित हो सकें।

बाला बोध्या विनेयाश्च प्रायः स्नेहेन साध्विदम्।
उच्यते शिशवः स्नेहं लभन्तां शिक्षणोन्मुखम् ॥ ४४ ॥
स्नेहातिरेकतो बाला विकृतिं यांति संततम्।
नायोग्यं दंडयेद् बालान् भयभीतान् कारयेत् ॥ ४५ ॥
अयोग्याचरणोत्पन्न - हानिर्याप्याऽपवार्य च।
लोकशिक्षेतिहासेन देयाऽन्या शिक्षणादपि ॥ ४६ ॥
ज्ञानवृद्धयै पुस्तकानां ज्ञानमेव न चेष्ट्यते।
भ्रमणार्थं च नेयास्ते क्षेत्रे सामीप्यवर्तिनि ॥ ४७ ॥
मार्गप्राप्तैर्विधेया च ज्ञानवृद्धिस्तु वस्तुभिः।
जिज्ञासायाः स्वभावश्च तेषां निर्मातुमिष्यते ॥ ४८ ॥
प्रवृत्तिरेषा प्रोत्साह्या विकासस्य मनःस्थितौ।
विधिः शोभन एवैष यस्तु प्रश्नोत्तरानुगः ॥ ४९ ॥
कीडेयुर्न कुसंगे च बाला इत्यभिदूश्यताम्।
संस्कृतैः सखिभिर्योगो यत्नैषां विधीयताम् ॥ ५० ॥
सखिभ्योऽपि विजानंति शिशवो बहुसंततम्।
यथा संरक्षकेभ्योऽतः सावधानैश्च भूयताम् ॥ ५१ ॥

टीका—बालकों को स्नेह से समझाने-बदलने का प्रयास किया जाए। एक आँख दुलार की दूसरी सुधार की रखने की उक्ति में बहुत सार है। अतिशय दुलार में कुछ भी करने देने से बालक बिगड़ते हैं। उन्हें पीटना डराना तो नहीं चाहिए, पर अवांछनीय आचरण की हानि अवश्य बतानी चाहिए और रोकना भी चाहिए। स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त बच्चों को लोकाचार सिखाने का उपयुक्त तरीका सारगर्भित कथा कहानियाँ सुनाना है। ज्ञानवृद्धि के लिए पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नहीं, उन्हें समीपवर्ती क्षेत्र में भ्रमण के लिए भी ले जाना चाहिए और रास्ते में मिलने वाली वस्तुओं के सहारे उनकी ज्ञानवृद्धि करनी चाहिए। जिज्ञासाएँ करने की प्रश्न पूछने की आदत डालनी चाहिए। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित भी करना चाहिए। मानसिक विकास का अच्छा तरीका प्रश्नोत्तर ही है। कुसंग में बच्चों को खेलने न दें। ऐसे साथियों का सुयोग बिठाएँ, जो अच्छे स्वभाव के हों। अभिभावकों की तरह साथियों से भी बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं इस ओर सावधान रहना चाहिए ॥ ४४-५१ ॥

बालकों के संतुलित विकास से संबंधित तीन महत्त्वपूर्ण

सूत्र ऋषि श्रेष्ठ धौम्य यहाँ बताते हैं। (१) दुलार एवं सुधार की समंवित नीति अपनाते हुए उन्हें स्नेह से वंचित भी न रखना एवं आवश्यकता पड़ने पर कड़ाई बरतकर अनौचित्य से उन्हें विरत करना। (२) पाठ्यक्रम से जुड़ी शिक्षा के अलावा भी व्यावहारिक जीवन की शिक्षा उन्हें कथा कहानियों के माध्यम से एवं प्राकृतिक जीवन के साहचर्य के माध्यम से देना, उनकी जिज्ञासु बुद्धि को प्रखर करना एवं स्वाध्यायशीलता के प्रति रुचि जगाना। (३) बालक किनकी संगति में दिन भर रहते हैं, इसका सतत् ध्यान रखना। गुण, कर्म एवं स्वभाव के परिष्कार हेतु उत्कृष्टता को सम्मान देने वाले नम्र स्वभाव के साथियों को ही संगी साथी बनाने को प्रोत्साहन देना।

उपरोक्त तीनों ही पक्ष बालकों के किशोर रूप में विकसित होने की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिस परिवार संस्था में इन पर समुचित ध्यान दिया जाता है, उसमें निश्चित ही श्रेष्ठ नागरिक विकसित होते एवं समुदाय को गौरवां वित करते हैं।

प्रवेशिकास्तरायाश्च शिक्षायाः पूर्वमेव तु।
निश्चेयं बालकायैष भविता केन वै पथा ॥ ५२ ॥
जीविकोपार्जनं केन माध्यमेन करिष्यति।
आनुरूप्येण चास्यैव निर्णयस्याग्रिमा ततः ॥ ५३ ॥
निर्धार्या तस्य कक्षा च शिक्षा नैवेदृशी शिशोः।
कर्तव्या जीवने तस्य व्यवहारं न याऽऽव्रजेत् ॥ ५४ ॥
बुद्धौ भार इवायाति व्यर्थं चानेन कर्मणा।
शिक्षणेनानिवार्येण वञ्चितो जायते शिशुः ॥ ५५ ॥
व्यर्थतामेति सर्वं च श्रमः कालो धनं तथा।
अनिश्चयेन चानेन पश्चात्तापस्ततो भवेत् ॥ ५६ ॥
शिक्षोद्देश्यगतिश्चित्या भोजनस्येव निश्चितम्।
क्रीडार्थं समयो देयः कलाकौशलवेदिता ॥ ५७ ॥
लोकाचारसदाचारभिज्ञता तस्य संभवेत्।
नीत्यभ्यस्तो भवेद् बालः प्रबंधश्चेतृशो भवेत् ॥ ५८ ॥
अस्मै प्रयोजनायैतद् भ्रमणं युज्यते ध्रुवम्।
लाभदं ज्ञानवृद्ध्या चेद् भ्रमणं तद्व्यवस्थितम् ॥ ५९ ॥
नोचेत्कौतुकमात्राय भ्रमणेन भवन्त्यपि।
हानयो वैपरीत्येन भ्रमणं हि हितैर्हितम् ॥ ६० ॥

टीका—प्रवेशिका स्तर की सामान्य शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चों को क्या बनाना है? उसे उपार्जन का क्या माध्यम अपनाना है। इस निर्णय के अनुरूप ही उसकी अगली शिक्षा न दी जाए, जो उसके व्यावहारिक जीवन में काम न आए। इससे मस्तिष्क पर अनावश्यक दबाव पड़ता है और जो सीखना आवश्यक था, उससे वंचित रहना होता है। किया गया श्रम और समय खरचा गया धन इस अनिश्चय के कारण व्यर्थ ही चला जाता

है। इसके लिए पीछे सदा पश्चाताप रहता है। भोजन की तरह शिक्षा के उद्देश्य का ध्यान रखना भी आवश्यक है। खेलने-कूदने का अवसर दिया जाए। लोक व्यवहार और नीति सदाचार का उपयुक्त ज्ञान लाभ होता रहे। ऐसा प्रबंध किया जाए। परिभ्रमण इस प्रयोजन के लिए आवश्यक है। परिभ्रमण के साथ ज्ञान संवर्द्धन की व्यवस्था पूरी तरह जुड़ी रहे, तभी उसका लाभ है। अन्यथा कौतूहल भर के लिए इधर-उधर घूमने में कई बार तो उलटी हानि भी होती है। उपयुक्त समाधान करते रहने वालों के साथ घूमना भी हितकर है ॥ ५२-६० ॥

शिक्षा बच्चों को क्या दी जानी है? इसका निर्धारण अभिभावकों को उनकी मनःस्थिति एवं देशकाल की परिस्थितियों को देखकर ही करना चाहिए। जो विषय अप्रासंगिक है, जिनका जीवन से दूर-दूर तक ताल्लुक नहीं शिशुओं के कंधे पर लाद देना वस्तुतः उनके विकास को रोकने के समान है। सामान्य ज्ञान, आहार-विहार, खेल-कूद, सामान्य शिष्टाचार, नैतिक गुणों के व्यावहारिक क्रियान्वयन का शिक्षण पाठ्यक्रम में जुड़ा रहे, तो ही शिक्षा फलदाई होती है। ऐसी अनौपचारिक शिक्षण प्रक्रिया पाठ्य पुस्तकों की डिग्री दिलाने वाली शिक्षा से लाख गुना उत्तम है, एवं अपनाई ही जानी चाहिए। पर्यटन परिभ्रमण भी आस-पास की परिस्थितियों, प्राकृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के संबंध में दृष्टिकोण को निखारता एवं व्यक्तित्व को सर्वांगपूर्ण बनाता है। आत्मरक्षा का अभ्यास सभी शिशुओं को साथ में कराया जाना चाहिए, ताकि वे साहसी स्वावलंबी बन सकें।

कुसंगाद् बालका रक्षयाः सेवकेषु सखिष्वपि।

अध्यापकेषु चान्येषु परिचितेषु जनेष्वपि ॥ ६१ ॥

योग्याः के संत्ययोग्याः के ध्येयमत्राभिभावकैः।

सतर्कत्वप्रसंगेऽस्मिन्ननिवार्यं हि मन्यताम् ॥ ६२ ॥

दुष्प्रभावान् कुसंगस्य बालानां प्रकृतिस्तथा।

भविष्यच्चापि संयातो विकृतिं दुःखदायिनीम् ॥ ६३ ॥

गृहकार्येषु बालानां रुचिं संपादयेन्नरः।

सहयोगस्य भावं च तेषां संवर्द्धयेदपि ॥ ६४ ॥

स्नेहात्मिकमपि कर्तुं च स्वातन्त्र्यं नैव दीयताम्।

मृदुताकारणात्तेषु केवलं जायते नहि ॥ ६५ ॥

शीतोष्णयोः प्रभावः स परं सदसतोरपि।

प्रभावस्तेषु क्षिप्रं स प्रभवत्यञ्जसैव तु ॥ ६६ ॥

टीका—कुसंग से बच्चों को बचाया जाए। सेवक, साथी, अध्यापक, परिचितों में कौन उपयुक्त, कौन अनुपयुक्त है? इसका ध्यान रखना अभिभावकों का काम है। इस संदर्भ में बहुत सतर्कता की आवश्यकता है। कुसंग के दुष्प्रभाव से कई बार बालकों का स्वभाव एवं भविष्य ही बिगड़ जाता है, जो

पीछे बड़ा दुःखदायी होता है। बच्चों को घर परिवार के कामों में रस लेने ध्यान देने और हाथ बँटाने की आदत आरंभ से ही डालनी चाहिए। दुलार में कुछ भी करते रहने की छूट नहीं देना चाहिए। कोमलता के कारण बालकों पर सर्दी-गर्मी का ही अधिक अवसर नहीं होता, वरन् भले-बुरे प्रभाव से भी वे जल्दी प्रभावित होते हैं ॥ ६१-६६ ॥

बालकों, किशोरों के कोमल मन पर सभी समीपवर्ती व्यक्तियों की मनःस्थिति का प्रभाव पड़ता है। चाहे वे घर में कार्यरत सेवक हों, उनके साथी सहचर हों, आने वाले परिचित अतिथिगण हों अथवा शिक्षण देने वाले गुरुजन। इनमें से कौन का साथ हितकर है, यह चुनाव है तो कठिन पर अभिभावकों को यह भी करना ही चाहिए। मौसम के थोड़े से अनुकूल-प्रतिकूल परिवर्तन स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं, उसी प्रकार संपर्क संबंधी थोड़े से भी प्रभाव का उन पर दूरगामी असर पड़ता है। अच्छा-बुरा चुनने की बुद्धि किशोरावस्था तक विकसित नहीं हो पाती, किंतु उनका प्रभाव ढलाई की प्रक्रिया से गुजर रहे मस्तिष्क पर तुरंत पड़ता है। अच्छा हो, वातावरण ऐसा बने कि हर श्रेष्ठ कार्य में बच्चों की रुचि जागे एवं दैनंदिन घर गृहस्थी के कार्यों में भी रस लेकर स्वावलंबी बनाएँ, इस प्रयोगशाला से कुछ सीखें।

पाणिग्रहणसंस्कारस्तदैवेषां च युज्यते।

यदेमे संस्कृता बाला संत्वपि स्वावलम्बिनः ॥ ६७ ॥

तथा योग्याश्च सन्त्वेता बालिका भारमञ्जसा।

क्षमा वोढुं गृहस्थस्य येन स्युः समयेऽपि च ॥ ६८ ॥

स्वावलंबनदृष्ट्या ता प्रतीयेरन्पि क्षमाः।

नो पाणिग्रहणं युक्तमविपक्वायुषां क्वचित् ॥ ६९ ॥

विकासेऽनेन तेषां हि बाधाऽभ्येति समंततः।

सुविधा साधनानां हि ज्ञानवृद्धेरपीह च ॥ ७० ॥

व्यवस्थेव सदा ध्येयं बालाः संस्कारिणो यथा।

भवंत्वपि सदा सर्वे गुणकर्मस्वभावतः ॥ ७१ ॥

चरित्रे चिंतने तेषां व्यवहारेऽपि संततम्।

शालीनता समावेशो यथायोग्यं भवत्वपि ॥ ७२ ॥

टीका—विवाह तब करें, जब बच्चे स्वयं सुसंस्कृत व स्वावलंबी बनने की स्थिति तक पहुँचें। लड़कियों को इस योग्य होना चाहिए कि वे नए गृहस्थ का भार उठा सकें और समय पड़ने पर आर्थिक स्वावलंबन की दृष्टि से भी समर्थ सिद्ध हो सकें। परिपक्व आयु होने से पूर्व बालकों या किशोरों का विवाह नहीं करना चाहिए। इससे उनके विकास क्रम में भारी बाधा पड़ती है। ज्ञान वृद्धि तथा सुविधा-साधनों की व्यवस्था करने की तरह ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से सुसंस्कारी बनें। उनके चिंतन, चरित्र और व्यवहार में शालीनता का

३.३४ प्रज्ञोपनिषद्

समुचित समावेश होता रहे ॥ ६७-७२ ॥

न केवल शारीरिक सरंचना की दृष्टि से स्वस्थ, अपितु मानसिक परिपक्वता, भावनात्मक विकास की स्थिति में पहुँचने पर ही युवकों को विवाह बंधन में बाँधा जाए। आयु का बंधन तो हो ही, गुण कर्म स्वभाव की दृष्टि से परिष्कार हो पाया है अथवा नहीं, इसे भी विवाह का आधार बनाया जाए। बाल्यकाल से कैशोर्यावस्था की अवधि अनुभवों के अर्जन, ज्ञान संपदा के संचय एवं व्यावहारिक शिक्षण की है। जीवन जीने की कला से जो अनभिज्ञ हैं, उन्हें समय से पूर्व विवाह-बंधन में बाँधना उनके साथ अत्याचार करना है।

वातावृतौ च योग्यायां वसितुं समयं च ते।

लाभन्तां तान् सुयोग्यांश्च नागरान् संस्कृतानपि ॥ ७३ ॥

निर्मातुं यत्नशीलैश्च भाव्यमेवाभिभावकैः।

उन्नतस्तरव्यक्तित्वे भविष्यत्संश्रितं शिशोः ॥ ७४ ॥

सत्प्रयोजनभाजस्ते सेवाभाजो भवंत्वपि।

अवसरा ईदृशा देयास्तेभ्यः प्रोत्साहनं तथा ॥ ७५ ॥

टीका—यह भी आवश्यक है कि उन्हें (बच्चों को) उपयुक्त वातावरण में रहने का अवसर मिले। सुयोग्य सुसंस्कारी नागरिक बनाने के लिए भी अभिभावक प्रयत्नशील रहें, क्योंकि व्यक्तित्व के समुन्नत स्तर पर ही बच्चों का उज्ज्वल भविष्य निर्भर रहता है। उन्हें सेवाभावी सत्प्रयोजनों में भाग लेते रहने का अवसर भी देना चाहिए और प्रोत्साहन भी ॥ ७३-७५ ॥

बालकों को सुसंस्कारी बनाना जितना अनिवार्य है, उतना ही यह भी कि उन्हें सेवा धर्म के माध्यम से इन गुणों को व्यवहार में उतारने का अभ्यास करने का अवसर भी मिले। परिवार, विद्यालय, मित्र, परिकर एवं समस्त समाज एक कार्यशाला है, जिसमें सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास किया जा सकता है। कोरे सिद्धांत तो चिंतन तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। उनका व्यवहार में उतरना अत्यंत अनिवार्य है। इस दिशा में सभी अग्रजों द्वारा समुचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,

श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते शिशु निर्माण इति प्रकरणो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

संख्यावृद्धौरता ये तु संततेरुचितं नहि।

दायित्वं च विकासस्य तेषां ज्ञातुं क्षमा नराः ॥ ७६ ॥

श्रुत्वा तेऽद्यतनं सारगर्भितं मंगलोदयम्।

परामर्शं गता लज्जां पश्यंतो दोषमात्मनः ॥ ७७ ॥

मर्यादितां महत्तां तेऽविदुः प्रजननस्य ते।

बालकान् प्रोन्नतान् कर्तुं निरचिन्वंश्च यत्नतः ॥ ७८ ॥

वयस्केषु च बालेषु श्रुत्वा प्रवचनं त्विदम्।

शुभमद्यतनं तत्र शुभाशासोदगान्वा ॥ ७९ ॥

महिलाश्चापि बालानामुज्ज्वलस्य भविष्यतः।

सुयोगमिव चायातमन्वभूवन् समा अपि ॥ ८० ॥

भाराधिक्याच्च जीर्णत्वविपदो रक्षणादपि।

संतोषः सुमहांस्तासामभूदानंदितात्मनाम् ॥ ८१ ॥

धौम्यप्रवचनं ताश्च वरदानमिव स्त्रियः।

दैवमेवान्वभूवंश्च दिव्यं प्रज्ञायुगोद्भवम् ॥ ८२ ॥

समापनस्य काले च विसर्जनरताः समे।

प्रसन्ना बहुसंतुष्टा निधिं प्राप्येव चाक्षयम् ॥ ८३ ॥

टीका—बालकों की संख्या बढ़ाने में उत्साही किंतु उनके समुचित विकास का उत्तरदायित्व न समझने वाले आज के सारगर्भित मंगलमय परामर्श को सुनकर लज्जित हो रहे थे और अपनी भूल मान रहे थे। उनसे मर्यादित प्रजनन की महत्ता समझी एवं घर के बालकों को समुन्नत बनाने में अधिक ध्यान देने और प्रयास करने का निश्चय किया। आज के प्रवचन से समझदार बच्चों में आशा की किरणें जगीं। महिलाओं ने भी अपने बालकों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के सुयोग का आगमन अनुभव किया। अधिक भार लदने से जीर्ण-शीर्ण होने की विपत्ति से बचने का भी उन्हें बड़ा सुख एवं संतोष मिल रहा था। उन्हें धौम्य का प्रवचन देव वरदान जैसा लगा। इसे उन्होंने प्रज्ञायुग की दिव्य देन समझा। आज के समापन समय पर विसर्जन कृत्य करते हुए विदा लेते हुए सभी लोग और भी अधिक प्रसन्न संतुष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे, मानों कोई अक्षयनिधि हाथ लग गई हो ॥ ७६-८३ ॥